



International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519

IJSR 2024; 10(2): 32-36

© 2024 IJSR

www.anantaajournal.com

Received: 24-12-2023

Accepted: 29-01-2024

सुशील नेगी

शोधच्छात्र, संस्कृत विभाग,
हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय,
शिमला, हिमाचल प्रदेश,
भारत

डॉ. सपना चन्देल

सहायक आचार्य, शोध
निर्देशक, संस्कृत विभाग,
हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय,
शिमला, हिमाचल प्रदेश,
भारत

पार्थसारथि मिश्र कृत शास्त्रदीपिका के तर्कपाद में जिज्ञासा अधिकरण – एक अध्ययन

सुशील नेगी, डॉ. सपना चन्देल

प्रस्तावना

भारतीय ज्ञान परम्परा में जब कभी भी किसी नवीन सिद्धान्त को प्रारम्भ किया जाता है तो उस सिद्धान्त से सम्बद्ध अनुबन्ध चतुष्टय के स्वरूप को बताना आवश्यक होता है। अनुबन्ध का अर्थ है बन्धा हुआ, जकडा हुआ¹ कहने का आशय है कि अनुबन्ध से किसी भी शास्त्रसम्बद्धसिद्धान्त को नियमित किया जाता है। आचार्य पार्थसारथि मिश्र रचित शास्त्रदीपिका में अनुबन्ध चतुष्टय कुछ इस प्रकार से है-

शास्त्रदीपिका	विषय	धर्म
	प्रयोजन	धर्मज्ञान
	सम्बन्ध	प्रतिपाद्य-प्रतिपादकभाव
	अधिकारिन्	अधीतवेद

प्रस्तुत शास्त्र का प्रयोजन वेदप्रतिपादित धर्म का ज्ञान कराना है, जैसा कि आचार्य पार्थसारथि मिश्र कहते हैं श्रोतृप्रवृत्तिसिद्धये धर्मज्ञानं कथ्यते।² अर्थात् इसके बाद धर्म की जिज्ञासा करें।

धर्म शब्द की व्युत्पत्ति धृञ् धारणे धातु से अर्तिस्तुसुहुसृधृक्षिभुभायावापदियक्षिनीभ्योइ मन्³ इस उणादि सूत्र मन् प्रत्यय करने पर होती है। इस धातु का अर्थ है धारण करना। अत एव जो कुछ भी धारण किया जाए वह धर्म कहलाता है।

Corresponding Author:

सुशील नेगी

शोधच्छात्र, संस्कृत विभाग,
हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय,
शिमला, हिमाचल प्रदेश,
भारत

¹ संस्कृत-हिन्दी शब्दकोष, वामनशिवराम आप्टे, पृष्ठ ३९

² शास्त्रदीपिका, तर्कपाद, पृष्ठ ५

³ उणादिकोषः, १.१४०

वैदिक ऋषियों ने सृष्टि के आदि में जो कुछ भी मानव जाति के लिए प्रतिपादित किया उसे धर्म शब्द कहा जाने लगा। जैसा कि ऋग्वेद के ऋषि ने कहा है- यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन्।⁴

बृहदारण्यकोपनिषद् में कहा गया है कि सत्य ही धर्म है और राजा को उस सत्य पूर्वक धर्म का पालन करना चाहिए। तच्छ्रेयो रूपमसृजत् तदेतत् क्षत्रस्य यद्धर्मस्तस्माद् धर्मात् परं नास्त्यतो अबलीयांसमाशंसते। धर्मेण यथा राज्ञा एवं यो वै स धर्मः, सत्यं वै तस्मात् सत्यं वदन्तमाहुर्धर्मं वदतीति धर्मं वा वदन्तं सत्यं वदतीत्येतद्धैवैतदुभयम् भवति।⁵

महाभारत जैसे महाकाव्य में कहा गया है कि प्राणिमात्र के कल्याण के लिए जो धारण किया जाए वह धर्म कहलाता है-

नमो धर्माय महते धर्मो धारयति प्रजाः।

यत्स्याद् धारणायुक्तः स धर्म इत्याहुः॥⁶

भारतीय दार्शनिक परम्परा में भी धर्म पद का एक पृथक् अर्थ सामने आता है। वैशेषिक दर्शन में कहा जाता है कि जिससे अभ्युदय और निःश्रेयस की प्राप्ति हो वह धर्म है। यतोऽभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिः स धर्मः।⁷

मीमांसा दर्शन में तो आचार्य जैमिनि ने वेदार्थ के अनुसार क्रिया के प्रवर्तक वाक्य को धर्म कहा है चोदनालक्षणोऽर्थो धर्मः।⁸ आचार्य लौगाक्षिभास्कर ने यागादि को ही धर्म कहा है और वेद प्रतिपादित याग का महत्त्व सिद्ध किया है- यागादिरेव धर्मः।⁹

आचार्य लौगाक्षिभास्कर का कहना है कि जो वेद प्रतिपादित है, प्रयोजनवान् हो तथा अनर्थफल को न देने वाला हो

उसी को धर्म कहा जाता है-वेदप्रतिपाद्यः प्रयोजनवदर्थो धर्मलक्षणम्¹⁰

मीमांसा दर्शन में धर्म के लिए लक्षण इस प्रकार भी है चोदनालक्षणोऽर्थो धर्मः¹¹ यहां पर चोदना शब्द का अर्थ है वेद का विधिवाक्य जैसे स्वर्गकामो यजेत, अग्निहोत्रं जुहुयात् इत्यादि। आचार्य आचार्य शबर स्वामी चोदनापद को क्रिया का प्रवर्तक मानते हैं अर्थात् वह वाक्य जो किसी पुरुष को किसी कर्म में प्रेरित करे वह चोदना या विधिवाक्य कहलाता है-चोदनेति क्रियायाः प्रवर्तकं वचनमाहुः।¹²

इस प्रकार पूर्वमीमांसा में प्रतिपादित धर्म पद की व्याख्या की जाती है। अब इस प्रस्थान में धर्म की जिज्ञासा के लिए वाद-प्रवाद किए जाते हैं।

शास्त्रदीपिकाकार पार्थसारथि मिश्र जो कि आचार्य कुमारिलभट्ट के अनुयायी हैं ने धर्म जिज्ञासा के विषय को प्रस्तुत किया है जिसमें यह बताया गया है कि वेद के अध्ययन के अनन्तर धर्म अथवा वेदार्थ की जिज्ञासा करनी चाहिए अथवा नहीं करनी चाहिए। इस विषय को आचार्य लौगाक्षिभास्कर ने भी प्रस्तुत किया है - वेदाध्ययनानन्तरं यतोऽर्थज्ञानरूपदृष्टार्थकं तदध्ययनम्, अतो हेतोर्धर्मस्य वेदार्थस्य जिज्ञासा कर्त्तव्या¹³

धर्म को समझने से पूर्व सर्वादि में यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि श्रुतिग्रन्थ तथा स्मृतिग्रन्थों में कहा है कि- अष्टवर्ष ब्राह्मणमुपनयीत तमध्यापयेत् अर्थात् जन्म से आठ वर्ष का होने पर ब्राह्मण का उपनयन संस्कार करे तथा उसे वेद पढाए।

अब पूर्वपक्ष यहां पर शङ्का करता है कि स्वाध्यायोऽध्येतव्यः इस विधिवाक्य के अनुसार वेद का अध्ययन करने के पश्चात् ब्राह्मण बालक को वेदार्थ रूप धर्म का विचार करने के लिए क्या गुरुकुल में ही रहना चाहिए अथवा गुरुगृह से समावर्तन (निष्क्रमण) कर लेना चाहिए? जैसे कि पार्थसारथि मिश्र कहते हैं - किमध्ययनान्तरं

⁴ ऋग्वेदः, १०.९०.१६

⁵ बृहदारण्यकोपनिषद्, १.४.१४

⁶ महाभारतम्, कर्ण पर्व,

⁷ वैशेषिकसूत्रम्, १.१.२

⁸ जैमिनिसूत्रम् १.१.२

⁹ अर्थसङ्ग्रहः, पृ० १२

¹⁰ अर्थसङ्ग्रह, पृष्ठ ११

¹¹ जैमिनिसूत्र, १.१.२.

¹² मीमांसा- शाबरभाष्यम्, पृ० १०

¹³ वहीं, पृष्ठ १४

धर्मजिज्ञासया गुरुगृहेऽवस्थातव्यम्, उत गुरुगृहात् समावर्तितव्यम्।¹⁴

इस विषय को आचार्य शबर में अपने भाष्य में भी प्रस्तुत किया है कि किन्त्वधीते वेदे द्वयमापतति- गुरुकुलाच्च समावर्तितव्यं वेदवाक्यानि च विचारयितव्यानि। तत्र गुरुकुलान्मा समावर्तिष्ठ कथं नु वेदवाक्यानि विचारयेद्।¹⁵ माधवाचार्य भी इसी प्रसङ्ग को प्रस्तुत करते हैं कि अधीतेऽपि वेदे धर्मविचाराय गुरुकुल एवाधिवासः कर्तव्यः।¹⁶

श्लोकवार्तिककार आचार्य कुमारिलभट्ट भी इस प्रसङ्ग को प्रस्तुत कर चुके हैं-

गुणप्रधानयोर्वापि विरोधाद् गुणबाधनम्।
स्नानोपलक्षिता चात्र निवृत्तिर्गुरुवेश्मनः॥
विरोधित्वेन बाध्येत न तु मध्वादिभक्षणम्।
तस्माद् गुरुकुले तिष्ठन्मधुमांसाद्यवर्जयन्॥¹⁷

उत्तरपक्ष उपरोक्त शङ्का पर उत्तर देते हैं कि यदि स्वाध्यायोऽध्येतव्यः इस अध्ययन विधिवाक्य में दृष्ट प्रयोजन रूप अर्थज्ञान को माना जाए तो अर्थज्ञान, वेद का विचार किए बिना नहीं हो सकता। अतः यह सिद्ध होता है कि वेदार्थ ज्ञान के लिए वेद का विचार करना पड़ेगा और वेद के विचार करने के लिए शिष्य को गुरुकुल में ही रहना पड़ेगा। पार्थसारथि मिश्र कहते हैं - यदि हि स्वाध्यायाध्ययनविधिना धर्ममात्रार्थमध्ययनम्।¹⁸

उत्तरपक्ष पुनरपि द्वितीय उत्तर प्रस्तुत हैं कि यदि स्वाध्यायोऽध्येतव्यः इस अध्ययन विधिवाक्य का अदृष्ट प्रयोजन स्वर्गादि को माना जाए तो स्वर्ग की प्राप्ति हो जाने से वेदार्थ विचार करने की कोई आवश्यकता नहीं रहती। क्योंकि फल की प्राप्ति तो हो रही है अत एव गुरुकुल में रहने का कोई औचित्य नहीं है। कहा भी है कि-

स्वर्गाद्यर्थेन विधीयते ततस्तन्मात्रेणैव शास्त्रार्थस्य समाप्तत्वात् अधीत्य स्नायात् इति स्मृतिवचनबलेन च समावर्तितव्यम्।¹⁹

इस प्रसङ्ग को माधवाचार्य ने भी कहा है कि अध्ययन विधि का दृष्टार्थ फल वेदार्थविचार मानने पर मीमांसा शास्त्र का आरम्भ आवश्यक है तथा अध्ययन विधि का अदृष्टार्थफल स्वर्गादि मानने पर वेदार्थ विचार की कोई आवश्यकता नहीं है अतः मीमांसा शास्त्र का आरम्भ नहीं करना चाहिए- इत्येतदन्तं जैमिनीयं धर्मशास्त्रमनारभ्यमारभ्यं वेति संशयः। अध्ययनविधेरदृष्टार्थत्वदृष्टार्थत्वाभ्याम्।²⁰

अब उत्तरपक्ष उपरोक्त शङ्का का समाधान करते हैं कि जहां पर दृष्ट फल की प्राप्ति होती है वहां अदृष्ट फल की कल्पना करने की कोई आवश्यकता नहीं है। अध्ययन विधि का दृष्ट फल वेदार्थज्ञान है, तथा अदृष्ट फल स्वर्गादि है। अतः यह सिद्ध होता है कि अर्थज्ञान रूप दृष्ट फल के प्राप्त होने से अदृष्ट फल की कल्पना नहीं करनी चाहिए।

इसीलिए अर्थज्ञानफल को देखते हुए शिष्य को गुरुकुल में ही रहते हुए मीमांसा शास्त्र अर्थात् विचार शास्त्र का आरम्भ करना चाहिए। ततस्तस्य विचारमन्तरेणासम्भवादध्ययनविधि- नैवाऽर्थादि चारो विहित इति गुरुगृह एवावस्थाय विचारयितव्यः।²¹

अब पूर्वपक्ष यह शङ्का करते हैं कि विधि तो वह है जो अज्ञात अर्थ का बोध कराए, यहां पर जो वेदार्थज्ञान है वह अध्ययन के बिना हो ही नहीं सकता यह तथ्य सभी को मालूम ही है। अतः एव सिद्ध होता है कि वेदार्थज्ञान के लिए विधि को मानने की कोई भी आवश्यकता नहीं है। तब स्वाध्यायोऽध्येतव्यः यह अध्ययन विधि वाक्य निरर्थक हो जाएगा। स्वाध्यायसंस्कारद्वारेणाध्ययनस्यार्थज्ञानहेतुत्वं विनैव विधिना प्रमाणान्तरेण सिद्धमेवेति तादर्थ्यं विध्यानर्थक्यम्।²²

¹⁴ शास्त्रदीपिका, तर्कपाद, १, पृ० ७

¹⁵ मीमांसा शाबर भाष्यम्, १, पृ० ५

¹⁶ जैमिनीयन्यायमाला, १, पृ० २३

¹⁷ श्लोकवार्तिकम्, १, १००-१०१

¹⁸ शास्त्रदीपिका, तर्कपादः, पृ० ७

¹⁹ शास्त्रदीपिका, तर्कपादः, पृ० ७

²⁰ सर्वदर्शनसङ्ग्रहः, पृ० ४४७

²¹ शास्त्रदीपिका, तर्कपादः, पृ० ९

²² वहीं, पृ० ९

पूर्वपक्ष कहता है कि इस अध्ययन विधि को हम नियम विधि मान लेते हैं। मीमांसा में नियम उसे माना जाता है जहां पर दो सिद्धान्त आ रहें हो और उनमें से किसी एक सिद्धान्त का चयन करना है।

जैसे कि व्रीहीन् अवहन्ति इस विधि वाक्य में मीमांसक नियम विधि मानते हैं, क्योंकि पुरोडाश (हविर्भाग) बनाने के लिए तण्डुल की को नखों के द्वारा साफ किया जाता है तथा अवघात (कूटना) के द्वारा भी हो सकती है। इस प्रकार यहां पर दो विधियां प्राप्त हो जाती है।

अतः ऐसी स्थिति में नियम विधि नियम बना लेती है कि पुरोडाश निर्माण के लिए तण्डुल की छाल की सफाई अवघातके माध्यम से ही किया जाए। उसी तरह चाहे वेद का अध्ययन करे या न करे वेदाध्ययन के फल की प्राप्ति करने के लिए तो कर्म ही करना पड़ेगा। यह तथ्य सभी को ज्ञात है। अत एव नियम विधि मानने की कोई आवश्यकता नहीं है- यदुक्तं लोकसिद्धत्वान्नाप्राप्तविधिरिति तत्तथैवास्तु। नियमविधित्वं तु न वारयितुं शक्यम्।²³

उत्तरपक्ष उपरोक्त मन्तव्य का उत्तर देते हैं कि अध्ययनविधि को नियमविधि कहना उचित नहीं है, क्योंकि पुरोडाश बनाने के लिए तण्डुल के छाल की निष्पत्ति जो अवघात द्वारा किया गया था उसका प्रयोजन था कि अवघात से तण्डुल के छाल की निष्पत्ति करने पर दर्शपूर्णमास याग में अपूर्व की उत्पत्ति होती है, इसीलिए वहां उस स्थल पर नियम विधि को स्वीकार किया गया था, परन्तु वेदार्थज्ञान के लिए किसी नियम विधि को मानने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि पार्थसारथि मिश्र भी कहते हैं - अवघातो हि दर्शपूर्णमासाऽपूर्वं नियम्यते, अवघातनिष्पन्नैरेव तण्डुलैरपूर्वं सिद्ध्यतीति²⁴ अर्थात् वहां ओअर नियम इसीलिए मान गया था क्योंकि अवघात से तण्डुल की सफाई करने से दर्शपूर्णमासयाग में अपूर्व की सिद्धि होती है। परन्तु स्वाध्यायोऽध्येतव्यः इस अध्ययन विधि में कोई भी अपूर्व को सिद्ध नहीं करना है। अत एव इस स्थल पर नियम विधि मानने की आवश्यकता नहीं है।

अब पूर्वपक्ष यह शङ्का करते हैं कि वेदाध्ययन के दृष्ट फल की कल्पना तो लोक में स्वतः ही हो जाता है, तब ऐसी परिस्थिति में स्वाध्याय विधि वाक्य की क्या आवश्यकता है? अतः अध्ययन विधि व्यर्थ हो जाती है।

उत्तरपक्षी उपर्युक्त शङ्का का उत्तर देते हैं कि अध्ययन विधि को व्यर्थ नहीं कहा जा सकता। क्योंकि वैदिक अग्निहोत्रादि कर्म का अनुष्ठान चतुर्थ वर्ण न करे, इसी उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए स्वाध्याया अध्ययन का विधान वेद ने किया है। योऽयमग्निहोत्रादिष्वधीतवेदानां त्रैवर्णिकानामेवाधिकारः।²⁵

इस विषय को पार्थसारथि मिश्र और भी स्पष्ट करते हैं कि स्वाध्यायोऽध्येतव्यः इस अध्ययन विधि को व्यर्थ माना जाएगा तो द्विजातीय त्रैवर्णिकों जो कि वेद का अध्ययन करते हैं, ऐसे विद्वानों की उपलब्धि नहीं होगी अर्थात् वेद के अध्ययन कर्ता द्विजातीय वर्ग का मिलना कठिन हो जाएगा। कहने का तात्पर्य यह है कि स्वाध्यायोऽध्येतव्यः इस अध्ययन विधि को न माना जाएगा तो चतुर्थ वर्ण में वेदाध्ययन अधिकार प्राप्त हो जाएगा। अतः स्वाध्यायोऽध्येतव्यः यह अध्ययन विधि अधिकार नियम भी बना लेता है। नाधीतवेदानां शूद्राणामित्यधिकारनियमः स प्रयोजनमध्ययनविधेः।²⁶

अतः इस वाद का सारांश यह है कि स्वाध्यायोऽध्येतव्यः इस अध्ययन विधि का दृष्ट फल वेदार्थज्ञान है तथा वेदार्थज्ञान के लिए शिष्य को गुरुगृह में ही रहना चाहिए, गुरुगृह से समावर्तन नहीं करना चाहिए। तथा च अध्ययनविधि के दृष्ट फल के ज्ञात होने पर अदृष्ट फल की कल्पना करना उचित नहीं।

पार्थसारथि मिश्र ने इसे उद्धृत किया है-

लभ्यमाने फले दृष्टे नाऽदृष्टकल्पना।

विधेश्च नियमार्थत्वान्नानर्थक्यं भविष्यति॥²⁷

²⁵ वही, पृ० १३

²⁶ वही, पृ० १३

²⁷ शास्त्रदीपिका, तर्कसङ्ग्रहः, पृ० १३

²³ वही, १, पृ० २३

²⁴ शास्त्रदीपिका, तर्कपादः, पृ० ११

माधावाचार्य भी इसे स्पष्ट करते हैं कि फल के दृष्ट होने पर अदृष्ट की कल्पना नहीं करनी चाहिए अर्थावबोधे दृष्टे फले सति फलान्तरकल्पनाया अयोगात्।²⁸

सन्दर्भ

1. शास्त्रदीपिका, तर्कपाद
2. जैमिनिसूत्रम्
3. उणादिकोषः
4. ऋग्वेदः
5. बृहदारण्यकोपनिषद्
6. वैशेषिकसूत्रम्
7. अर्थसङ्ग्रहः
8. मीमांसा- शाबरभाष्यम्,
9. महाभारतम्- कर्णपर्व
10. जैमिनीयन्यायमाला
11. श्लोकवार्तिकम्
12. सर्वदर्शनसङ्ग्रहः, पृ० ४४७
13. संस्कृत-हिन्दी शब्दकोष (वामन शिवराम आप्टे)

²⁸ सर्वदर्शनसङ्ग्रहः, पृ० ४५५